12 यह एक नया पागलपन

आज जैन-समाज में, विशेषत: स्थानकवासी-समाज में एक नया धार्मिक-उन्माद, एक नया जनून पैदा होता जा रहा है, जो एक प्रकार से धर्म के नाम पर मानसिक पागलपन की सीमा पर पहुँच रहा है।

यह वह पागलपन है, जो कहता है कि जैन स्थानकों, उपाश्रयों आदि में अपने द्वारा मान्य साधु-साध्वियों के अतिरिक्त अन्य किसी को नहीं ठहरने देंगे। वर्तमान-युग की दृष्टि से कुछ क्रांतिशील विचारक साधु-साध्वियों ने परम्परागत क्रिया-काण्डों में विवेक पूर्वक कुछ युगानुरूप परिवर्तन किए हैं, जिनमें यथाप्रसंग वाहन आदि के भी परिवर्तन हैं। किन्तु, तथाकथित धर्म-धुरन्धरों की दृष्टि में यह सब पापाचार है, अत: वे हमारे पवित्र उपाश्रय में, स्थानक में निवास के अधिकारी नहीं रहे हैं।

सूक्ष्म-दृष्टि से तो क्या, स्थूल-दृष्टि से भी देखा जाए, तो आप द्वारा मान्य आपके अनेक पूज्य पुरुषों ने, महात्माओं ने परंपरागत चली आ रही अपनी चर्या में अनेक परिवर्तन कर लिए हैं। वे आरम्भ-परिग्रह के जाल में दूर तक उलझ गए हैं। अपने शिष्यों को पढ़ाने के लिए, पत्र-व्यवहार एवं अपने कार्यक्रमों की रिपोर्ट आदि भेजने के लिए वेतनभोगी पण्डित रखते हैं, यत्र-तत्र स्थानकों एवं संस्थानों का निर्माण करवा रहे हैं। दीक्षा आदि के आडम्बर भी कम नहीं हैं। हजारों के मूल्य के शाल उपयोग में ले रहे हैं। विहार आदि में कहीं प्रत्यक्ष, तो कहीं परोक्ष शास्त्रीय-मार्ग का अतिक्रमण कर रहे हैं, वर्षों-ही -वर्षों से डोली, व्हीलचेयर, बाबा गाड़ी, रिक्शा आदि वाहन का प्रयोग कर रहे हैं और क्षुद्र नश्वर शरीर के अपवाद के नाम पर कार एवं वायुयान का प्रयोग कर लेते हैं। कहाँ तक गिनाए ? एक लम्बी सूची तैयार हो सकती है, इनके उक्त धार्मिक पराक्रमों की। इतने लम्बे-चौड़े प्रत्यक्ष परिवर्तन हो गए है, फिर भी अन्ध-भक्तों में यह श्रद्धा फैलाई जा रही है कि हम तो शास्त्र के अक्षर-अक्षर पर चल रहे हैं। मियांजी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गिर पड़े फिर भी टांग ऊँची। कमाल है, इस दुःसाहस का। इन सबके लिए उपाश्रय के द्वार खुले हैं। जबकि इन लोगों में कुछ तो वे लोग भी है, जिनकी चारित्रहीनता की भद्र कथाएँ समाचार पत्रों के पृष्ठों तक भी पहुँच चुकी है, फिर भी वे पूज्य है, इसलिए कि वे सम्प्रदाय में हैं। सम्प्रदाय के घेरे में, बाड़े में बन्द यदि धर्म प्रचारार्थ आदि की दृष्टि से तथा युगानुरूप सामाजिक चेतना की लक्ष्यता से उपयोगी परिवर्तन के कुछ प्रयोग कर लेते हैं, तो इनकी नजरों में धर्म का सत्यानाश हो जाता है।

आज के स्थानक क्या है? मल-मूत्र आदि के अशास्त्रीय परिष्ठापन के गन्दगी के केन्द्र बन रहे हैं। इसलिए बम्बई आदि महानगरों के नये बन रहे उपनगरों में अन्य लोग स्थानक-उपाश्रय नहीं बनने दे रहे हैं। चूँकि साधु-साध्वी उपाश्रयों के द्वारा गन्दगी फैलाते हैं। यह समाचार यूँ ही हवा में नहीं फैला है। बम्बई से प्रकाशित गुजराती जैन प्रकाश में आ चुका है।

और फिर, कहने को स्थानकवासी समाज जड़ पूजा का विरोधी है। परन्तु ईंट-पत्थर के बने जड़ मकान, जिसे स्थानक कहते हैं, उसकी पवित्रता में विक्षिप्त है। और यह पवित्रता, वह पवित्रता भी है, जिनमें उत्सव-प्रसंगों पर गो-मांस-भक्षी तक मांसाहारी और मद्यपायी सादर निमंत्रित किए जाते हैं तथा एक-दूसरे से बढ़कर सत्कार-सम्मान भी पाते हैं।

एक बात और बता दूँ—सच्चे निर्ग्रन्थ साधुओं को तो ऐसे उपाश्रयों में ठहरना ही नहीं चाहिए। क्योंकि वे साधुओं के लिए औद्येशिक हैं। कितना ही झुठलाने का प्रयत्न किया जाए, स्पष्ट है कि साधुओं के निमित्त ही इनका निर्माण होता है और अनेक जगह तो चन्दा आदि एकत्रित कराकर साक्षत् साधु ही बनवाते हैं। सिद्धान्त-दृष्टि से ये साधु अनाचारी हैं। बात कड़वी है, किन्तु सत्य तो सत्य है। भले ही वह कड़वा हो या मीट्ठा।

जैन-समाज का यह दुराग्रह कभी रंग ला सकता है। विहारकाल में जैन-साधु वैष्णव आदि सम्प्रदायों के मठों, मन्दिरों आश्रमों, रामद्वारों तथा गुरुद्वारों आदि में ठहरते है। और वे ठहराते भी हैं, जबकि वे स्पष्टतः जैन-धर्म और जैन-साधुओं को नास्तिक समझते है। और आप उन्हें मिथ्या-दृष्टि मानते हैं। पारम्परिक विचार विरोध का कितना अनन्त अन्तराल है। फिर भी वे सम्मान के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साथ, उनकी अपनी दृष्टि में आपके इन नास्तिक साधुओं को प्रेम से अपने यहाँ ठहराते हैं एवं भिक्षा आदि भी देते हैं। परन्तु, आप लोग तो उन साधुओं को अपने उपाश्रयों में कहाँ ठहराते हैं? उनको तो क्या ठहराएँगे? अपने ही जैन-परम्परा के भिन्न विचार रखने वाले श्वेताम्बर-दिगम्बर मुनि तथा विचार-क्रांति के पक्षधर स्थानकवासी मुनियों तक को भी नहीं ठहरने देते हैं।

मैं पूछता हूँ आपका अनेकान्त कहाँ है? वे वैष्णव आदि अन्य पक्ष उदार हैं या आप? वे मानवतावादी हैं या आप? मानवीय सभ्यता की कसौटी पर कौन खरा उतर रहा है? हृदय की सच्चाई से कुछ उत्तर है आपके पास?

कुछ नहीं है, यह सब परिग्रहवाद और सम्प्रदायवाद के अहंकार का नग्न रूप है। इस बदलते युग में इन अहंकारों की आयु बहुत थोड़ी रह गई है। साधारण जन तो अपनी आँख रखता नहीं है, परन्तु मुझे आश्चर्य है, श्री एम. जे. देसाई जैसे विचारशील व्यक्ति भी जब इस तरह भिन्न विचार के और क्रान्तिशील साधु-साध्वियों को अपने अपाश्रय में न ठहरने देने का सगर्व अपने पत्र में दावा करते हैं। क्या वस्तुतः इस युग का यह शोभनीय आचरण है? आपके इस आग्रह से उनका तो अपना कुछ बनता-बिगड़ता नहीं है। स्पष्ट है, यह चोट उनके गौरव पर नहीं, आपके छोटे मन पर ही पड़ती है। अच्छी है, समय पर कुछ समझदारी से काम लिया जाए।

आगम, निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि आदि के विस्तृत अध्ययन पर से स्पष्ट है कि साधु को गाँव एवं नगर में रहना ही नहीं चाहिए। गाँव एवं नगर के बाहर वन, उद्यान (बाग), चैत्य, गुफा, देवमंदिर आदि में ठहरना उचित है। यदि अपवादवश कभी ठहरना ही हो, तो गाँव में एक रात्रि और नगर में पाँच रात्रि तक ही ठहरा जा सकता है। यह विधान केवल जैन-आचार-शास्त्र का ही नहीं है, अन्य वैदिक आदि परम्परा के साधुओं के लिए उनके धर्म-शास्त्रों में ऐसा ही उल्लेख है। महर्षि पतञ्जलि, अन्य धर्म-सूत्रकारों एवं स्मृतिकारों ने स्पष्ट उल्लेख किया हैं दूर क्यों जाएँ? जब स्वामी विवेकानन्दजी बेलगाँव में श्री हरिपद मित्र के यहाँ ठहरे थे, तब उनके द्वारा अधिक ठहरने का आग्रह करने पर 20 अक्टूबर 1892 को स्वामी विवेकानन्द ने उन्हें स्पष्टतः कहा था-"सन्यासियों को नगर में तीन दिन और गाँव में एक दिन से अधिक ठहरना उचित नहीं है।" यह स्पष्टतः उल्लेख-श्री रामकृष्ण आश्रम, नागपुर-2 से प्रकाशित "विवेकानन्दजी की कथाएँ"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नामक हिन्दी पुस्तक में देखा जा सकता है।

इस पर से भारतीय साधुओं की अतीतकालीन परम्परा की चर्या की स्पष्टतः झाँकी उपलब्ध हो जाती है कि साधु बिना किसी विशेष कारण के गाँव एवं नगर में न ठहरे। यहाँ पर तो सच्चे साध्वाचारी साधुओं को नगर में ठहरना भी वर्जित है।

मैं जीवन के 82 वें वर्ष में चल रहा हूँ। मुझे इस प्रकार के पक्ष-अपक्ष के सम्बन्ध में कोई रुचि नहीं है। फिर भी सत्य का तकाजा है कि धर्म एवं सत्य के नाम पर फैलाये जानेवाले भ्रमों का प्रतिकार किया जाए। सत्य के लिए निन्दा-स्तुति अपने में कोई अर्थ नहीं रखते। मैं जानता हूँ, मेरे लेखों से कुछ लोगों के क्षुद्र मन उत्तेजित होंगे, और वे इधर-उधर मन चाहा अन्ट-सन्ट लिख भी सकते हैं और छाप भी सकते हैं। यह उनकी अपनी मनोवृत्ति और तदनुकूल उनका कर्म है। मुझे इसकी कुछ भी चिंता नहीं है। जीवन और प्रकृति ने साथ दिया, तो मैं जीवन के अन्तिम श्वास तक असत्य एवं दम्भ पर समयोचित प्रहार करता ही रहूँगा। भगवान् महावीर ने कहा है–

"सच्चं खु भगवं"

– सत्य ही भगवान् है। भगवान् सत्य की प्रतिष्ठा बनाए रखना, भगवान् सत्य की पूजा है और यह सत्य के उपासक के जीवन में अन्तिम क्षण तक होती रहनी चाहिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org